रोहित सिंह और अन्य

बनाम

बिहार राज्य (अब झारखंड राज्य) और अन्य

अक्टूबर 17 2006

[एस.बी. सिन्हा और पी.के. बालासुब्रमण्यन न्यायाधिपतिगण]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 आदेश VIII, नियम 6 ए

प्रतिवाद- विवाद्यकों के विरचना के बाद और साक्ष्य बंद होने के पश्चात् नहीं उठाया जा सकता- इसलिए, तथ्यों के आधार पर, विचारण के लिए विवाद्यकों की रचना के पश्चात्, प्रतिवादीगण संख्या 3 से 17 की ओर से प्रस्तुत तथाकथित प्रतिवाद को विचारण न्यायालय द्वारा विचारार्थ स्वीकार किया जाना अवैध और अधिकारिता से परे था।

सह-प्रतिवादी के खिलाफ प्रतिवाद- पोषणीयता- प्रतिपादित किया गया कि: प्रतिवाद अनिवार्य रूप से वादी के खिलाफ निर्देशित किया जाना चाहिए हालांकि संयोगवश या इसके साथ-साथ सह-प्रतिवादीगण के खिलाफ भी अनुतोष मांगा जा सकता है- लेकिन ऐसा प्रतिवाद जो केवल सह-प्रतिवादीगण के विरूद्ध है पोषणीय नहीं है- तथ्यों के आधार पर, प्रतिवादीगण संख्या 3 से 17 का वादी के खिलाफ, कोई दावा नहीं था, सिवाय इसके कि वे वादी द्वारा मांगे जा रहे अधिकार और वादी द्वारा

भरोसा किए गए दस्तावेज की वैधता से इनकार कर रहे थे- वे अपने आप में एक अधिकार के निहित होने का दावा कर रहे थे और उनका पूरा मामला प्रतिवादीगण संख्या 1 व 2 के खिलाफ निर्देशित था- ऐसा प्रतिवाद विचारण न्यायालय द्वारा विचारार्थ स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था।

संभागीय वन अधिकारी और बिहार राज्य के विरूद्ध प्रतिवादी संख्या 1 व 2 के रूप में एक वाद संपत्ति के स्वामित्व की घोषणा/संपत्ति का कब्जा वापस प्राप्त करने के लिए किया गया था। विचारण के पश्चात्, सुनवाई के बाद अदालत ने फैसला सुरक्षित रख लिया था। उस प्रक्रम पर, अपीलार्थीगण ने मुकदमे की संपत्ति पर कब्जे का अधिकार मांगते हुए वाद में हस्तक्षेप करने के लिए प्रार्थना पत्र पर किया। जो स्वीकार किया गया और उन्हें प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के रूप में दावे में शामिल किया गया। इसके पश्चात संपत्ति के कुछ हिस्सों पर कुछ व्यक्तियों को जो स्वयं को पट्टेदार होना जता रहे थे, वाद में प्रतिवादीगण संख्या 18 से 20 के रूप में शामिल किया गया। वाद में आगे विचारण हुआ और अतिरिक्त साक्ष्य जिसमें हस्तक्षेपकर्ताओं की भी साक्ष्य ली गई, साक्ष्य पुनः बंद की गई और हस्तक्षेपकर्ताओं की ओर से बहस भी समाप्त की गई। हालांकि दावा वादी की ओर से पैरवी न करने के आधार पर खारिज कर दिया गया, क्योंकि वादी बहस प्रस्तुत करने में असफल रहा। लेकिन बाद में वाद का बहाल कर दिया गया। उसके पश्चात् प्रतिवादीगण संख्या 3 से 17 ने लिखित कथन में संशोधन करने के लिए प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया, जो

स्वीकार किया गया। विचारण न्यायालय ने निर्धारित किया कि वादी अपना आधिपत्य या आधिपत्य का अधिकार साबित करने में असफल रहा है और इसलिए दावा खारिज होने योग्य था, लेकिन इसके पश्चात् आगे यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिवादी संख्या 3 से 17 द्वारा लिखित कथन में संषोधन के बाद, आदेश VIII, नियम 6 ए, सी पी सी के अनुसार एक प्रतिवाद अस्तित्व में आया और तब से वादी, प्रतिवादी संख्या 1 व 2 और प्रतिवादी संख्या 18 से 20 ने प्रतिवाद का कोई जवाब पर नहीं किया था जिसे आदेश VIII, नियम 6 ए, सीपीसी के तहत चूक के रूप में माना जाना चाहिए और प्रतिवादी संख्या 3 से 17 को इस आधार पर डिक्री दी जानी चाहिए कि प्रतिवाद का कोई खण्डन नहीं किया गया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय की डिक्री को, प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के अधिकार और हित की घोषणा करके और उन्हें प्रतिवादीगण संख्या 1 से 2 और प्रतिवादीगण संख्या 18 से 20 के विरूद्ध स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री प्रदान करके संशोधन किया। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय की डिक्री को खारिज किया व वाद को विचारण न्यायालय को नये सिरे से निर्णय पारित करने के लिए प्रतिपे्रषित कर दिया। इसलिए प्रतिवादी 3 से 17 की ओर से वर्तमान अपीलें पर की गई हैं।

प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से प्रस्तुत अपीलों को खारिज करते हुए और प्रतिवाद पर पारित डिक्री को निरस्त करते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया-

1- यह स्पष्ट है कि साक्ष्य के समाप्त होने के पश्चात्, हस्तक्षेपकर्ताओं को पक्षकार बनाने का कोई अवसर नहीं था। यह मानते हुए भी कि वे उचित तरीके से पक्षकार बनाये गये, उसके पश्चात् उनके द्वारा जवाब दावा पेश किया गया और दावा आगे के विचारण के लिए चला गया और अतिरिक्त साक्ष्य जिसमें हस्तक्षेपकर्ताओं की साक्ष्य भी सम्मिलित हैए ली गई, साक्ष्य पुनः बंद की गई और हस्तक्षेपकर्ताओं की ओर बहस भी समाप्त कर ली गई थी। वाद पैरवी नहीं करने के आधार पर अपने आप में खारिज कर दिया गया क्योंकि वादी अपनी ओर से बहस करने में असफल रहा। लेकिन वाद तत्पश्चात् बहाल कर दिया गया। उस स्तर पर हस्तक्षेपकर्ताओं की पहल पर कोई प्रतिवाद विचारार्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता है। एक प्रतिवाद लिखित कथन के पश्चात् भी पेश किया जा सकता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रतिवाद विवाद्यकों की रचना के पश्चात् और साक्ष्य समाप्त होने के पश्चात् भी किया जा सकता हो, इसलिए प्रतिवाद संख्या 3 से 17 की ओर से प्रस्तुत तथाकथित प्रतिवाद को विचारण न्यायालय द्वारा विवाद्यकों की रचना के पश्चात् विचारार्थ स्वीकार करना स्पष्ट रूप से अवैध और अधिकार क्षेत्र से परे था। इस संक्षिप्त आधार पर

तथाकथित प्रतिवाद जो प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से पेश किया गया, को पोषणीय नहीं माना जा सकता। (289- डी-एफ)

2- प्रतिवादी संख्या 3 से 17 ने जो किया वह केवल उनके लिखित कथन जो उन्होंने मूल रूप से पेश किया था उसमें एक वाक्य को जोड़कर लिखित कथन के संसोधन के लिए था। मूल रूप से केवल यह दलील दी गई थी कि वे प्रतिवादीगण वादग्रस्त भूमि पर अपने पूर्ववर्तियों के समय से शांतिपूर्ण आधिपत्य में होने का दावा कर रहे थे। प्रतिवादी संख्या 3 से 17 यह जोड़ना चाह रहे थे कि वे लंबे और निर्बाध कब्जे के आधार पर स्वामित्व के अधिकार का दावा कर रहे थे और वे वाद में अपने स्वामित्व के अधिकार की घोषणा, जिसके लिए उन्होंने घोषणात्मक न्याय शुल्क का भुगतान किया है, की अनुमति चाहते हैं। यहाँ तक कि उनके स्वामित्व के अधिकार की घोषणा के लिए एक प्रार्थना भी नहीं जोड़ना चाही गई थी जैसा कि सामान्य परंपरा है इसलिए वर्तमान मुकदमे में, मूल लिखित कथन और प्रस्तुत किए गए संषोधन को देखने पर यह स्पष्ट है कि आदेश VIII, नियम 6ए सीपीसी के अनुसार कोई प्रतिवादी नहीं था, जो उस प्रतिवाद के विचारण को न्यायोचित ठहरा सके। यह मानते हुए भी कि ऐसा प्रतिवाद पोषणीय था तब भी वाद में वादी के विरूद्ध कोई अनुतोष नहीं मांगा गया था। लेकिन यह केवल वाद में सह-प्रतिवादीगण के विरूद्ध निर्देषित था। तथाकथित प्रतिवाद उस आधार पर भी खारिज किया जा सकता है। (28&जी, एच, 290&ए,बी)

3.1- विचारण न्यायालय ने कभी भी औपचारिक रूप से लिखित कथन को प्रतिवाद के रूप में नहीं माना और प्रतिवादी संख्या 1 व 2 और प्रतिवादी संख्या 18 से 20 को जवाब में कोई अभिवचन करने पर अवसर नहीं दिया। विचारण न्यायालय के पास इस आधार पर आगे बढ़ने और आदेश VIII, नियम 6ए सीपीसी के अनुसार डिक्री जारी करने का कोई अवसर नहीं था कि प्रतिवाद के विरूद्ध कोई जवाब पेश नहीं किया गया है। विचारण न्यायालय ने यह स्पष्ट रूप से पाया कि प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से उनके आधिपत्य के दावे के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं है। लेकिन फिर भी प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के पक्ष में डिक्री केवल इस आधार पर जारी की गई कि प्रतिवादी संख्या 1 व 2 और प्रतिवादी संख्या 18 से 20 ने, प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से प्रस्तुत प्रतिवाद का कोई जवाब पेश नहीं किया है। आश्र्चयजनक रूप से, न्यायालय अपने पहले के आदेश को ध्यान में रखने में विफल रहा कि प्रतिवादी संख्या 18 से 20 जवाब दावा पेश नहीं कर सकें और वे केवल कार्यवाही को देख पाये और विचारण में भाग ले पाये। पूरी प्रक्रिया जो अपनाई गई वह अवहनीय थी और डिक्री जो एक तरफ प्रतिवादी संख्या 1 व 2 की ओर से व दूसरी तरफ प्रतिवादी संख्या 18 व 20 की ओर से प्रतिवाद का जवाब पेष करने में तथाकथित रूप से असफल रहने के आधार पर जारी की गई, स्पष्ट रूप से कानून में अवहनीय है। (290&सी,ई)

3.2. साधारणतया, एक प्रतिवाद यद्यपि वह दावे में बताये गये वाद हेतुक से अलग आधार पर पेष किया जा सकता है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवाद आवश्यक रूप से वाद में वादी के विरूद्ध निर्देशित होना चाहिए, यद्यपि प्रसंगव या उसके साथ में उसमें वाद के सह-प्रतिवादीगण के विरूद्ध भी अनुमति मांगा जा सकता है। लेकिन एक प्रतिवाद जो केवल सह-प्रतिवादीगण के विरूद्ध निर्देषित है, पोषणीय नहीं है। प्रतिवाद पेश किया जाकर मुकदमे को किसी प्रकार के अन्तराभिवचनीय वाद में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। यहां पर, प्रतिवादी संख्या 3 से 17 का वादी के विरूद्ध इसके सिवाय की वे वादी द्वारा जताये गये अधिकार और उन दस्तावेजों को, जिनपर वादी भरोसा कर रहा था, की वैधता को इंकार कर रहे थे, कोई दावा नहीं था और वे स्वयं में अधिकार निहित होना जता रहे थे। उनका ऐसा कोई मामला नहीं था कि वादी उनके द्वारा जताया गया आधिपत्य में हस्तक्षेप कर रहा हो। उनका पूरा मामला वाद में प्रतिवादी संख्या 1 व 2 के विरूद्ध निर्देषित था और वे राज्य के खिलाफ दावा करने की कोषिष कर रहे थे और वे राज्य के इस दावे को चुनौती दे रहे थे कि वादग्रस्त भूमि राज्य के आधिपत्य में अधिसूचित वन नहीं थी। इस प्रकार का प्रतिवाद विचारण न्यायालय द्वारा विचारार्थ स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था भेद किया गया।

4- इसके अलावा प्रतिवाद में ऐसी कोई प्रार्थना नहीं थी। केवल यह अभिवचन की घोषणात्मक अनुतोष के लिए न्यायालय शुल्क का भुगतान

और चिरभोगजन्य स्वामित्व की घोषणा की जाये, पर्याप्त नहीं है। यह मानते हुए भी कि इसे प्रतिवादी संख्या 3 से 17 द्वारा स्वामित्व की घोषणा के लिए एक प्रार्थना के रूप में माना जा सकता है, प्रतिवादी संख्या 3 से 17 को कब्जे की वसूली के लिए एक डिक्री देने का कोई कारण नहीं था जैसा की विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवाद के जरिये किया गया और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री जरिये किया गया। यहां तक कि आवश्यक न्याय शुल्क का भी भुगतान नहीं किया गया। चूँकि उन न्यायालयों द्वारा वो अनुतोष दिया गया जिसकी प्रार्थना नहीं की गई थी, डिक्री का वह भाग किसी भी स्थिति में अवहनीय है। (291& ई, एफ)

5- चूंकि वर्तमान प्रकरण में प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से प्रस्तुत प्रतिवाद को प्रतिवाद के रूप में विचारार्थ स्वीकार नहीं जा सकता था, उच्च न्यायालय ने मुकदमे को नए सिरे से आगे बढ़ाने के लिए विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित करने में त्रुटि की है। वादी द्वारा दायर मुकदमे को विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया था। वादी ने डिक्री के विरूद्ध कोई अपील पेश नहीं की थी। इस प्रकार वाद का खारिज होना अंतिम हो गया है। चूँकि जो प्रतिवाद पेश करना चाहा गया है वह विचारार्थ स्वीकार करने योग्य नहीं पाया गया है, जाहिर है कि प्रतिवाद को प्रतिवाद के रूप में विचारित किये जाने या नये वाद के रूप में माने जाने का कोई प्रश्न नहीं है। इसलिए हालांकि प्रतिवादी संख्या 1 व 2 और प्रतिवादी संख्या 18 से 20 ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध इस न्यायालय में कोई

अपील नहीं की है, यह आवश्यक है कि उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए रिमांड के आदेश को दरकिनार करके उच्च न्यायालय के निर्णय को संशोधित किया जाये और इसे केवल एक ऐसे मामले में छोड़ा जाये, जहां मुकदमा खारिज हो जाएगा और जिसमें कोई प्रतिवाद नहीं किया गया था। (292&बी-सी)

6- इस दृष्टिकोण से, प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से दायर अपील को खारिज करते हुए भी और प्रतिवाद पर डिक्री के निर्णय को निरस्त करने के निर्णय को बरकरार रखते हुए, यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा पारित रिमांड के आदेश को रद्द कर रहा है और वादी द्वारा दायर मुकदमे को खारिज करने की पुष्टि करते हुए एक डिक्री पारित करता है और यह अभिनिर्धारित करता है कि कोई वैध या मान्य प्रतिवाद नहीं था जिसे वर्तमान मुकदमे में विचारार्थ स्वीकार किया जा सके। (292-डी-ई)

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील नंबर 45171/2006

झारखंड उच्च न्यायालय, रांची के उभय-निष्ठ अंतिम आदेश व निर्णय दिनांक 01-07-2005 जो द्वितीय अपील संख्या 50/2004 में पारित किया गया, से

के साथ

सी.ए. संख्या 4518/2006

मोहित चौधरी, पूजा शर्मा, ज्योति मेंदिरत्ता और सुब्रत देव अपीलार्थी के लिए।

शशि शेखर द्विवेदी, पी.एन. मिश्रा, राजीव शंकर द्विवेदी, विषाल कुमार तिवारी, राजीव रंजन तिवारी, राजीव सिंह, मंगल शर्मा, एस.बी. उपाध्याय और अनिल के. झा प्रत्यर्थी के लिए।

न्यायालय का निर्णय पी.के. बालासुब्रमण्यन, न्यायाधिपति द्वारा दिया गया,

1. अनुमति दी गई।

2. प्रत्यर्थी संख्या 6 ने वादी के रूप में एक वाद टी.एस. नंबर 9/1996, वादग्रस्त भूमि में अपने स्वामित्व की घोषणा के लिए, उस पर अपने आधिपत्य की पुष्टि के लिए, विविचारण के दौरान यदि यह पाया जाये कि वादी को वादग्रस्त भूमि से बेदखल कर दिया गया है, न्यन्यायालय की प्रक्रिया से आधिपत्य को वापस दिलाने की डिक्री के लिए, प्रप्रतिवादीगण को वादग्रस्त भूमि में वादी के शांतिपूर्ण आधिपत्य में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थाई निषेधाज्ञा के लिए और अन्य अनुषांगिक अनुतोषों के लिए एक वाद पेश किया। वाद दो प्रतिवादियों के खिलाफ दायर किया गया था, संसंभागीय वन अधिकारी और बिहार राज्य , जोजो इसमें प्रतिवादी संख्या 1 व 2 हैं। प्रतिवादी संख्या 1 व 2 ने वादी के स्वामित्व और कब्जे के दावे से इंकार करते हुए एक लिखित कथन दायर किया। उन्होंने अभिवचन

किया कि संपत्ति निहित वन थी जिसे वन अधिनियम, 1927 की धारा 29 के तहत अधिसूचित किया गया था, जो राज्य में निहित रही, कि वादी के पास कोई वाद हेतु नहीं था और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस के अभाव में मुकदमा पोषणीय नहीं था। वाद में विचारण हुआ। साक्ष्य बंद की गई। बहस पूरी की गई। फैसला सुरक्षित रखा गया।

2. उस स्तर पर, कुछ तीसरे पक्षकारों ने जो यहां अपीलकर्ता हैं, ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 नियम 10(2) के तहत एक आवेदन यह दावा करते हुए किया कि उनके पास मालिक की तरह वादग्रस्त संपत्ति सहित संपत्तियों का कब्जा है और यह कि वादग्रस्त भूमि पर उनका अधिकार, स्वामित्व, हित और खास आधिपत्य है। उन्होंने निवेदन किया कि न्यायालय के समक्ष उनकी उपस्थिति आवश्यक थी ताकि अदालत प्रभावी रूप से और पूरी तरह से वाद वाद में अंतर्वलित सभी प्रश्नों का निपटारा कर पाये। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि ऐसा कोई आरोप नहीं था कि वादी उनके अधिकार या आधिपत्य में हस्तक्षेप करने का प्रयास कर रहा था। यह केवल कहा गया था कि उन्हें पता चला था कि ने एक वाद कुछ अवैध और अमान्य दस्तावेजों के आधार पर दायर किया है और वाद की कार्यवाही में उन्हें पक्षकार बनाये बिना तेजी से आगे बढ़ रहा है। उक्त प्रार्थना पत्र विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया। बनाए गए पक्षकारों को वाद में प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के रूप में स्थान दिया गया।

3. प्रतिवादी संख्या 3 से 12 की ओर से एक लिखित कथन वादी के दावे को विवादित करते हुए और यह अभिवचन करते हुए कि वादग्रस्त भूमि उनके पास एक टिकेत महाराज सिंह के वंशजों के हैसियत से है और वे भूमि के खास आधिपत्य में है। उन्होंने अभिवचन किया कि वे विरासत से वादग्रस्त संपत्ति के शांतिपूर्ण आधिपत्य में हैं और उनके पूर्वजों ने अधिकतर भूमि पर जो कि वादग्रस्त भूमि थी, प्रतिकूल कब्जे के कानून और बिहार भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधानों, दोनों के तहत रैयती अधिकार हासिल कर लिया था। उन्होंने दोहराया कि वे वादग्रस्त भूमि पर अपने पूर्वजों के समय से शांतिपूर्ण आधिपत्य में होने का दावा कर रहे थे। वर्ष 1964-65 में वन वन अधिकारियों द्वारा भूमि का सीमांकन नहीं किया गया था।

4. इसी बीच, कुछ अन्य व्यक्तियों ने जो भूमि के कुछ भाग के पट्टेदार होने का दावा कर रहे थे, ने स्वयं को वाद में पक्षकरा बनाये जाने हेतु प्रार्थना पत्र पेश किये और न्यायालय ने उन्हें प्रतिवादी संख्या 18 से 20 के रूप में स्थान दिया, न्यायालय ने यद्यपि उनको हस्तक्षेप करने की अनुमति दी, किंतु निर्देशित किया कि वे कार्यवाही को केवल देख सकते हैं या विचारण में भाग ले सकते हैं, किंतु उन्हें कोई लिखित कथन पेश करने का कोई अधिकार नहीं होगा।

5. फिर से, कुछ देरी के बाद और वाद के आगे बढ़ने के बाद प्रतिवादी संख्या 12 से 17 ने एक प्रार्थना पत्र पूर्व से प्रस्तुत लिखित कथन में संशोधन हेतु और परिच्छेद संख्या 16 के अंत में एक वाक्य, अपने लंबे और निर्बाध आधिपत्य के आधार पर अपने स्वामित्व के अधिकार को हासिल करने के दावे को दोहराते हुए, जोड़ने के लिए पेश किया। उक्त संशोधन विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया। हम समझते हैं कि लिखित कथन के परिच्छेद 16 को संशोषित रूप में उद्धत करना उपयोगी होगा।

> "16 यह कि परिच्छेद 9 से 11 में किए गए कथन गलत हैं और मनगढ़ंत और अस्वीकार किये जाते हैं। प्रतिवादीगण अपने पूर्वजों के समय से वादग्रस्त भूमि पर शांतिपूर्ण आधिपत्य में है। उन प्रतिवादीगण ने लंबे और निर्बाध आधिपत्य के आधार पर स्वामित्व अर्जित किया है। इसलिए वे वाद जिसके लिए घोषणात्मक न्याय शुल्क पेश किया गया, में अपने स्वामित्व की घोषणा करवाने की अनुमति चाहते हैं।"

यह देखा गया है कि विचारण न्यायालय ने उनके द्वारा प्रस्तावित न्यायालय शुल्क भुगतान करने की अनुमति दी। लेकिन, यह देखना होगा कि संषोधन के माध्यम से लिखित कथन में डिक्री के लिए कोई प्रार्थना

नहीं जोड़ी गई थी, यहां तक की मांगी गई घोषणा के लिए भी, जिसके लिए न्याय शुल्क का भुगतान किया गया था।

6- जिस तरह से विचारण न्यायालय ने मुकदमे का विचारण किया, वह चौंका देने वाला है। स्पष्ट रूप से, सुसंगत प्रक्रिया और अन्य पहलुओं को विचारण न्यायालय द्वारा नजरअंदाज किया गया या उसके ध्यान में नहीं लाया गया। तीसरे व्यक्तियों को पक्षकार बनाना, जिनके खिलाफ वादी ने कोई दावा नहीं किया था और वह भी विवाद्यकों की रचना, साक्ष्य के समाप्त होने, बहस पूरी होने और जब निर्णय सुरक्षित रख लिया उसके पश्चात्, उचित नहीं था। इसके बाद, लिखित कथन में अस्पष्ट संशोधन करने की अनुमति देने और ऐसे अनुतोष के लिए न्याय शुल्क पेश करने की अनुमति देने, जिसके लिए कोई विनिर्दिष्ट अनुतोष लिखित कथन में नहीं मांगा गया था और एक अस्पष्ट दावा जो आवष्यक अभिवचनों से समर्थित नहीं था, के पश्चात् पुनः साक्ष्य बंद करना, केवल अजिब होने के रूप में ही वर्णित किया जा सकता है।

7- अंततः, विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वादी का वाद सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस के अभाव में पो k णीय नहीं था। विचारण न्यायालय ने एक हुकुमनामे जो तथाकथित रूप से एक एफ.एफ. ईसाई के द्वारा प्रदान किया गया था, के आधार पर किये गये अपने दावे को साबित नहीं किया है और वादी अपना आधिपत्य या

आधिपत्य के अधिकार को साबित करने में असफल रहा है। इसलिए दावा खारिज होने योग्य पाया गया। इसके बाद, विचारण न्यायालय इस प्रकार आगे बढ़ा जैसे कि प्रतिवादी संख्या 3 से 17 ने वाद में प्रतिवादी संख्या 1 व 2 और प्रतिवादी संख्या 18 से 20 के विरूद्ध कोई प्रतिवाद पेश किया हो और उसे इस तरह के प्रतिवाद पर निर्णय लेना है। विचारण न्यायालय ने एक स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया:

> "बेशक निहित करने के दिन कब्जे के कार्य का कोई वास्तविक सबूत नहीं है, लेकिन मैं पाता हूं कि यह मुकदमा वादी या प्रतिवादी संख्या 1 और 2 में से किसी के भी द्वारा बिल्कुल भी अस्वीकार नहीं किया गया है।"

तब, विचारण न्यायालय प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से खण्डन नहीं करने के आधार पर एक डिक्री प्रदान करने के लिए आगे बढ़ा। यह इस आधार पर था कि प्रतिवादी संख्या 12 से 17 के द्वारा उनके लिखित कथन में संशोधन और उनके द्वारा न्याय शुल्क पेश करने की विचारण न्यायालय अनुमति देने पर संहिता के आदेश VIII, नियम 6ए के तहत एक प्रतिवाद अस्तित्व में आया और चूंकि वादी, प्रतिवादी संख्या 1 व 2 और प्रतिवादी संख्या 18 से 20 ने प्रतिवाद का कोई जवाब पेश नहीं किया है। इसलिए इसे संहिता आदेश VIII, नियम 6ई के तहत चूक के रूप में माना जाना चाहिए और प्रतिवादी संख्या 3 से 17 को इस आधार

पर की प्रतिवाद का खण्डन नहीं किया गया है, डिक्री प्रदान की जानी चाहिए। विचारण न्यायालय अपने स्वयं के आदेश को पूरी तरह से भूल गया (जिसकी शुद्धता स्वयं संदिग्ध है) कि हालांकि प्रतिवादी संख्या 18 से 20 जोड़े गये, लेकिन उन्हें लिखित कथन पेश करने का अधिकार नहीं था और वे केवल पर्यवेक्षक होने के लिए ही थे। विचारण न्यायालय ने न ही यह ध्यान में रखा कि वाद कभी भी तथाकथित प्रतिवाद के, वादी और प्रतिवादी संख्या 1 व 2 की ओर से जवाब के लिए नहीं रखा गया था।

विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के प्रतिवाद को डिक्री किया। इसलिए एक डिक्री, वाद को निरस्त करते हुए और प्रतिवाद को डिक्री करते हुए, यह घोषणा करते हुए कि प्रतिवादी संख्या 3 से 17 का वादग्रस्त संपत्ति में पूर्ण अधिकार, स्वामित्व व हित निहित है और उन्हें वादग्रस्त संपत्ति का कब्जा वापस प्राप्त करने का अधिकार है, जारी की गई। विचारण न्यायालय द्वारा यह स्पष्ट नहीं किया गया, यह ध्यान में नहीं रखा गया कि कब्जा वापस प्राप्त करने का या चाही गई घोषणा के परिणामस्वरूप कोई अनुतोष औपचारिक प्रार्थना के माध्यम से नहीं मांगा गया है।

8- प्रतिवादी संख्या 1 और 2 ने टी.ए. नंबर 26/2000 में विचारण न्यायालय की डिक्री को चुनौती दी। प्रतिवादी संख्या 18 से 20 ने अपने स्तर पर विचारण न्यायालय की डिक्री को टी.ए. नंबर 24/2000 में

चुनौती दी। इन दोनों अपीलों में यद्यपि वादी को प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाया गया और उसपर तामिल हुई, लेकिन वह उपस्थित नहीं हुआ। बेषक, उसने वाद के खारिज होने के विरूद्ध भी कोई अपील पेश नहीं की। इस प्रकार दावे का खारिज होना अंतिम हो चुका है।

9- विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश जिसने अपीलों की सुनवाई की, प्रतिवादी संख्या 18 से 20 की आंरभिक प्रार्थना को अस्वीकार किया कि दावे को विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाये और उन्हें वाद में जवाब में दावा पेश करने का अवसर दिया जाये या तथाकथित प्रतिवाद का जवाब, इस आधार पर कि उन्होंने विचारण न्यायालय के आरंभिक आदेश को चुनौती नहीं दी है, कि उन्हें पक्षकार बनाया गया और कार्यवाही पर केवल नजर रखने का आदेश दिया गया, पेश करने की अनुमति दी जाये। जाहिर है, न्यायालय यह देखने में विफल रही कि इस तरह के अंतर्वर्ती आदेश को सिविल प्रक्रिया की धारा 105(1) के तहत भी अपील में चुनौती दी जा सकती है। इसके बाद, भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 29 के तहत जारी एक अधिसूचना दिनांक 08-12-1953, पर इस आधार पर अविश्वास करते हुए कि स्थानीय भाषा के समाचार पत्रों जिसमें इसका अनुवाद प्रकाशित किया गया था, राज्य द्वारा यह दिखाने के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया था कि प्रक्रियात्मक आवश्यकताओं का पालन किया गया था, न्यायालय प्रतिवादी संख्या 1 व 2 की अपीलों को उन्हीं आधारों पर जो विचारण न्यायालय द्वारा अपनाये गये थे, खारिज करने के लिए आगे बढ़ा,

कि प्रतिवादी संख्या 1 व 2 ने, प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के द्वारा किये गये तथाकथित प्रतिवाद का जवाब पेश नहीं किया है। उस अदालत ने इस सवाल पर ठीक से विचार नहीं किया कि क्या वास्तव में कानून के अनुसार एक प्रतिवाद था, क्या ऐसा प्रतिवाद पोषणीय था और क्या एक प्रतिवाद साक्ष्य समाप्त होने के पश्चात् विचारार्थ स्वीकार किया जा सकता है, और वह भी कुछ अजनबियों के कहने पर जिन्होंने स्वयं को पक्षकार बनाये जाने की प्रार्थना की, ताकि वे वादी के खिलाफ नहीं, बल्कि राज्य, प्रतिवादी के खिलाफ अपने अधिकार का दावा कर सकें। न्यायालय ने यह भी जांच नहीं की कि प्रतिवादी संख्या 3 से 17 जिस स्वामित्व के अधिकार का दावा कर रहे हैं, क्या उनके साबित किया गया है। न्यायालय ने इस बात का भी विवेचन नहीं किया कि चिरभोगजन्य स्वामित्व के मामले के समर्थन में कानुनन पर्याप्त अभिवचन थे या नहीं, क्या इस प्रकार का असंगत चिरभोगजन्य स्वामित्व का दावा, संपत्ति में स्वामित्व के दावा करने के पश्चात् किया जा सकता है या नहीं और क्या प्रतिकूल कब्जे के आधार पर स्वामित्व को स्थापित करने के लिए स्वीकार्य साक्ष्य थी या नहीं। जिस तरह से अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने अपीलों और उसमें उत्पन्न होने वाले प्रष्नों का निपटारा किया है, वह उस तरीके से अधिक निराषाजनक है, जिसके द्वारा मुंसिफ, जिसकी कम से कम अनुभवहीन होने की उपधारणा की जा सकती है, ने वाद की सुनवाई और निपटारा किया था। किसी ने यह उम्मीद की होगी कि अतिरिक्त जिला न्यायाधीश प्रक्रियात्मक और मूल

कानून के बारे में थोड़ी अधिक जागरूकता दिखाएंगे और प्रथम अपीलीय न्यायालय के रूप में अपने दायित्व को पूरा करेंगे। इस प्रकार, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने दोनों अपीलों को खारिज कर दिया, लेकिन प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के अधिकार और हित की घोषणा करके और उन्हें प्रतिवादी संख्या 1 व 2 और प्रतिवादी संख्या 18 से 20 को स्थायी रूप से आगे खनन कार्यों को जारी रखने से रोकने के लिए एक डिक्री प्रदान करके विचारण न्यायालय की डिक्री को संशोधित करने का इरादा किया। प्रथम अपीलीय न्यायालय लिखित कथन को देखने का प्रयास भी नहीं किया कि क्या तथाकथित प्रतिवाद में इस प्रकार की कोई प्रार्थना है जिससे कि डिक्री को न्यायोचित ठहराया जा सकें। न्यायालय ने प्रसंगवश उल्लेख किया कि वादी का मुकदमा संहिता की धारा 80 के तहत नोटिस के अभाव में खारिज होने योग्य है।

10- प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय से असंतुष्ट होकर प्रतिवादी संख्या 1 व 2 ने उच्च न्यायालय में एस.ए. नंबर 50/2000 पेश की। प्रतिवादीगण संख्या 18 से 20 में एस.ए. नंबर 32/2004 पेश की। इन दोनों अपीलों को कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर जो की न्यायालय के द्वारा स्वीकृति के स्तर पर विरचित किये गये थे, के आधार पर विचारार्थ स्वीकार किया गया। प्रश्न, प्रतिवादियों के एक समूह के द्वारा प्रतिवादियों के दूसरे समूह के विरूद्ध किये गये प्रतिवाद को विचारार्थ स्वीकार करना और उन्हें निर्णित करने के क्षेत्राधिकार, क्या न्यायालय को वाद खारिज

करने के पश्चात् एक विवाद जो प्रतिवादीगण के मध्य था, को निर्णय करने का अधिकार था, क्या संहिता के आदेश VIII, नियम 6ए के तहत प्रतिवाद के दायरे को पूरी तरह से गलत नहीं समझा गया और क्या मुकदमें में अभिवचनों और साक्ष्य के आधार पर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा प्रतिवाद पर डिक्री, जिसे द्वितीय अपील में चुनौती दी गई थी, को जारी करना न्यायोचित था, से संबंधित थे। उच्च न्यायालय के एक विद्वान न्यायाधीश द्वारा प्रासंगिक पहलुओं पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित कि अधीनस्थ न्यायालयों ने आदेश VIII, नियम 6ए की आवश्यकताओं पर ध्यान दिये बिना और कानून की सही प्रक्रिया अपनाये बिना संशोधन याचिका को प्रतिवाद के रूप में माना और प्रतिवदी संख्या 3 से 17 के पक्ष में डिक्री जारी की जो अवहनीय है। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालयों ने कानून की सही प्रक्रिया और विरचित किये गये विवाद्यकों का निर्णय करते समय साक्ष्य के नियमों को पूरी तरह से नजरअंदाज किया है। इसलिए निणर्यों को कायम नहीं रखा जा सकता है। इसके बाद, द्वितीय अपीलीय न्यायालय ने द्वितीय अपीलों को स्वीकार किया और विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय की डिक्रियों को अपास्त किया, वाद को पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत की गई साक्ष्य के आधार पर कानून के अनुसार नये सिरे से निर्णित करने के लिए प्रतिप्रेषित किया। दोनों द्वितीय अपीलों में पारित निर्णय को चुनौती देते हुए यह अपील

प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से दो अलग-अलग याचिकाएं अपील करने के लिए विशेष अनुमति के लिए दायर की गई।

11- अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एक प्रतिवाद तब भी पोषणीय है जबकि दावे में प्रतिवादीगण जो वाद हेतुक रखते है, वह दावे में वादी द्वारा बताये गये वाद हेतुक से उत्पन्न नहीं हुआ हो और ऐसी परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपीलार्थियों द्वारा प्रतिवाद के रूप में किये गये दावे पर सही प्रकार से विचार किया है और जिस प्रकार से उनका निर्णय किया गया है, वह न्यायोचित था। यह भी तर्क दिया गया कि संहिता का आदेश VIII, नियम 6ए एक प्रतिवादी को अन्य प्रतिवादीगण के विरूद्ध प्रतिवाद पेश करने से नहीं रोकता है। यद्यपि वादी के विरूद्ध कोई अनुतोष नहीं मांगा गया था। यह भी तर्क दिया गया कि प्रतिवादी संख्या 1 व 2 या प्रतिवादी संख्या 18 से 20 के द्वारा दायर प्रतिवाद के जवाब के अभाव में विचारण न्यायालय द्वारा संहिता के आदेश VIII, नियम 6ई के अनुसार आगे बढ़ना और इस आधार पर प्रतिवाद को स्वीकार करना की लिखित कथन में किये गये संषोधन में किये गये दावे का कोई जवाब या विरोध नहीं था, न्यायोचित था। इसलिए यह निवेदन किया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप करना न्यायोचित नहीं था। संहिता के आदेश VIII, नियम 6ए की विषय-वस्तु और दायरे पर उन्होंने विभिन्न निर्णयों का जिसमें इस न्यायालय के निर्णय भी सम्मिलित हैं, जो

रमेष चंद अर्दावत्यब बनाम अनिल पंजवानी, (2003) 7 एस.सी.सी. 350 में पराकाष्ठा पर पहुंचे, का उल्लेख किया और तर्क दिया कि उच्च न्यायालय द्वारा उत्तरित निष्कर्ष की कोई आवश्यकता नहीं थी।

12- वाद में प्रतिवादी संख्या 1 व 2 की ओर से यह तर्क दिया गया कि प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से किया गया कोई प्रतिवाद था ही नहीं, जो कानून को पता हो, कि इस प्रकार का प्रतिवाद प्रतिवादी संख्या 1 व 2 के विरूद्ध पोषणीय था, कि ऐसे व्यक्ति जिन्होंने स्वयं को, जब साक्ष्य समाप्त हो गई और विचारण पूरा हो गया, पक्षकार बनवाया, उनकी ओर से प्रतिवाद विचारार्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि वह पोषणीय हो, कि उच्च न्यायालय द्वारा, प्रतिवाद को विचारण न्यायालय द्वारा और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा गलत रूप से विचारार्थ स्वीकार करना पाये जाने पर सामान्य रूप से द्वितीय अपीलों को स्वीकार करना चाहिए था और प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के तथाकथित प्रतिवाद को खारिज करना चाहिए था और वाद को प्रतिप्रेषित करने की कोई आव';कता नहीं थी, जबकि वादी द्वारा प्रस्तुत वाद को विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और उसने उक्त बर्खास्तगी को कोई चुनौती नहीं दी थी। इसलिए यह निवेदन किया गया कि जब एक प्रतिवाद पोषणीय होना नहीं पाया गया, तब विचारण न्यायालय द्वारा और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा उस प्रतिवाद पर पारित डिक्री को खारिज करने की ही आवश्यकता थी और वादी के दावे को खारिज करने के रूप में छोड़ना आवश्यक था। प्रतिवादी

संख्या 18 से 20 की ओर से यह निवेदन किया गया कि विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया कि कानूनन अज्ञात थी और उन्हें मुकदमे में लिखित कथन दायर करने की अनुमति दिए बिना और उनके हितों को प्रभावित नहीं किया जा सकता था और जो डिक्री जारी की गई, वह अन्यथा भी अवहनीय थी। क्योंकि प्रतिवाद के द्वारा कोई प्रार्थना नहीं की गई थी। जिसका उन्हें उत्तर देना था और विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के तथाकथित प्रतिवाद को बरकरार रखने के लिए, अभिवचनों और साक्ष्य का कोई विवेचन नहीं किया गया। यह भी बताया गया है कि प्रतिवादी संख्या 3 से 17 द्वारा असंगत मामले स्थापित किए गए हैं और भले ही अनुमेय था, लिखित कथन में रखें गये प्रतिकूल कब्जे या चिरभोगजन्य स्वामित्व के मामले के समर्थन में कानूनन कोई अभिवचन नहीं थे और उक्त परिस्थितियों के तहत वाद को विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित करने की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं थी। वादी का दावा जो खारिज हो गया था और खारिज होने का आदेष अंतिम हो चुका था, इसलिए उच्च न्यायालय को केवल प्रतिवाद पर जारी डिक्री को समाप्त करना था और मुकदमे को समाप्त करना था।

13- जवाब में, यह दोहराया जाता है कि 1976 के अधिनियम 104 द्वारा लाए गए संहिता में संशोधनों को देखते हुए, एक प्रतिवाद को विचारार्थ

स्वीकार करने का दायरा बढ़ाया गया था और अपीलार्थीगण द्वारा किया गया प्रतिवाद संहिता के आदेश VIII, नियम 6ए के दायरे में आता है।

14- हम पहले इस बात पर विचार करेंगे कि क्या इस मामले में संहिता के आदेश VIII, नियम 6ए के संदर्भ में वाद में कोई प्रतिवाद था। यहां पर प्रत्यर्थी संख्या 6 के द्वारा 26-02-1996 को संभागीय वन अधिकारी और बिहार राज्य की ओर से प्रतिवादी संख्या 1 व 2 के रूप में वाद पेष किया गया था। प्रतिवादीगण द्वारा लिखित कथन पेष करने के पश्चात् विवाद्यक विरचित किये गये थे और वाद में विचारण हुआ। 03-06-1996 और 06-06-1996 को वादी की ओर से साक्ष्य पूरी की गई। 14-06-1996 को प्रतिवादीगण की ओर से साक्ष्य पूरी की गई। 24-06-1996 को बहस पूरी की गई। निर्णय सुरक्षित रखा गया। निर्णय सुनाने की दिनांक 25-06-1996 नियत की गई। निर्णय नहीं सुनाया गया और यह प्रतीत होता है कि न्यायाधीश का उसके पश्चात् स्थानांतरण किया गया। इसलिए 20-08-1996 को उत्तराधिकारी न्यायाधीश द्वारा बहस पुनः सुनी गई और निर्णय सुरक्षित रखा गया। निर्णय की दिनांक 27-08-1996 नियत की गई। जाहिरा तौर पर इसे सुनाया नहीं गया। इसके पश्चात् प्रतिवादी संख्या 3 से 17 ने 11-09-1996 को हस्तक्षेप के लिए एक प्रार्थना पत्र वाद में पेश किया। हम पूर्व से ही पक्षकार बनाये जाने के लिए पेश प्रार्थना में लगाये गये आरोपों का उल्लेख कर चुके हैं। हम पुनः केवल यह ध्यान देते है कि उन्होंने स्वयं को संपत्ति के आधिपत्य में होने का दावा किया और उनकी

उपस्थिति न्यायालय के समक्ष, प्रकरण को न्यायालय द्वारा पूरी तरीके से और प्रभावी तरीके से और वाद में अंतर्वलित सभी प्रश्नों को निर्णित करने के लिए आ' ;क थी। 19-09-1996 को हस्तक्षेप के लिए प्रार्थना पत्र स्वीकार किया गया। 30-09-1996 को प्रतिवादीगण संख्या 3 से 12 के द्वारा एक लिखित कथन पेश किया गया। उसमें किये गये अभिवचनों का हम संक्षिप्त रूप से पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं।

15- इसके बाद, वादी के गवाहों को वापस बुलाया गया और प्रतिवादीगण को उनके प्रतिपरीक्षा करने की अनुमति दी गई। यह 05-10-1996 को की गई। प्रतिवादीगण संख्या 1 व 2 के गवाहों को पुनः वापस बुलाया गया और उक्त प्रतिवादीगण की ओर से उनकी प्रतिपरीक्षा की अनुमति दी गई। प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से साक्ष्य ली गई। यह 24-02-1997 को प्रारंभ हुई और 30-01-1997 को समाप्त हुई। उसके पश्चात् बहस पुनः सुनी गई और 04-03-1997 को प्रतिवादीगण जिसमें प्रतिवादीगण संख्या 3 से 17 भी सम्मिलित हैं, की ओर से बहस पुरी की गई। वाद वादी की ओर से बहस हेतु स्थगित किया गया। 05-03-1997 को वादी की ओर से पैरवी न होने के कारण वाद खारिज किया गया। जो 29-05-1998 को पुनः संस्थित किया गया। इसके पश्चात् 05-06-1998 को प्रतिवादीगण संख्या 3 से 17 ने लिखित कथन में संशोधन हेतु एक प्रार्थना पत्र पेश किया। संषोधन 20-07-1998 को स्वीकार किये गये। ऐसा कोई आदेश नहीं था कि संशोधित लिखित कथन को एक प्रतिवाद के रूप में

माना गया या वादी या प्रतिवादी संख्या 1 व 2 को लिखित कथन पेश करने का या उसका जवाब पेश करने का निर्देश दिया गया हो। प्रतिवादीगण संख्या 3 से 17 ने अपने लिखित कथन में विचारण न्यायालय के आर्थिक क्षेत्राधिकार पर प्रश्न किया था। उक्त अभिवचन को 04-02-1999 को वापस लेने की अनुमति दी गई। यह स्पष्ट है कि साक्ष्य के समाप्त होने के पश्चात् हस्तेक्षकर्ताओं को पक्षकार बनाये जाने का कोई अवसर नहीं था। यह उपधारणा भी कर ली जाये कि उन्हें उचित प्रकार से पक्षकार बनाया गया है, उसके पश्चात् उनके द्वारा लिखित कथन पेश किया और वाद आगे विचारण के लिए बढ़ा और अतिरिक्त साक्ष्य जिसमें हस्तक्षेपकताओं की भी साक्ष्य सम्मिलित है, ली गई, साक्ष्य पुनः समाप्त की गई और हस्तक्षेपकताओं की ओर से भी बहस पूरी हो गई थी। वाद अपने आपमें वादी की ओर से पैरवी नहीं करने के कारण, क्योंकि वह बहस करने में असफल रहा था, खारिज कर दिया गया था। लेकिन वाद उसके पश्चात् पुनः संस्थित हुआ। उस स्तर पर हस्तक्षेपकताओं की पहल पर कोई प्रतिवाद विचारार्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता था। एक प्रतिवाद निस्संदेह लिखित कथन पेश किये जाने के पश्चात् भी पेश किया जा सकता है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि एक प्रतिवाद विवाद्यकों की विरचना और साक्ष्य के समाप्त हो जाने के पश्चात् किया जा सकता हो। इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा विचारण के लिए विवाद्यकों की विरचना के पश्चात् प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के प्रतिवाद को विचारार्थ स्वीकार करना स्पष्ट रूप

से अवैध और क्षेत्राधिकार से परे था और उक्त संक्षिप्त आधार पर तथाकथित प्रतिवाद जो प्रतिवादीगण संख्या 3 से 17 की ओर से दायर किया गया था, अपोषणीय होना अभिनिर्धारित किया जाता है।

16- जैसा कि देखा जा सकता है, प्रतिवादीगण संख्या 3 से 17 ने जो किया है, वह अपने मूल लिखित कथन के परिच्छेद 16 में एक वाक्य को जोड़कर अपने लिखित कथन में केवल संशोधन करना था। परिच्छेद 16 में केवल यह अभिवचन किया गया था कि वे प्रतिवादीगण वादग्रस्त संपत्ति पर अपने पूर्वजों के समय से शांतिपूर्ण आधिपत्य में होने का दावा कर रहे हैं। वे यह जोड़ना चाहते थे कि लंबे और निर्बाध आधिपत्य के आधार पर स्वामित्व के अर्जित होने का दावा कर रहे हैं और वे वाद में अपने स्वामित्व की घोषणा कराने की अनुमति चाहते हैं, जिसके लिए घोषणात्मक न्याय शुल्क पेश किया गया है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि यह नहीं चाहा गया कि सामान्य प्रथा के अनुसार अपने स्वामित्व की घोषणा कराने की प्रार्थना जोड़ी जाये।

इसलिए, संहिता के आदेश VIII, नियम 6A के संदर्भ में, मूल लिखित कथन और जो संशोधन प्रस्तुत किये गये, को देखने पर यह स्पष्ट है कि हस्तगत प्रकरण में कोई प्रतिवाद नहीं था, जिसके आधार पर ऐसे प्रतिवाद के विचारण को न्यायोचित ठहराया जा सकें। भले ही यह उपधारणा कर ली जाये कि इस प्रकार का प्रतिवाद वाद में वादी के विरूद्ध कोई अनुतो k का

दावा नहीं करने और यह केवल वाद के सह-प्रतिवादीगण के विरूद्ध निर्देशित था, के बावजूद पोषणीय था। तथाकथित प्रतिवाद इस आधार पर भी नामंजूर किये जाने योग्य है।

17- तृतीयतः यह देखा गया है कि विचारण न्यायालय ने कभी भी लिखित कथन को औपचारिक रूप से प्रतिवाद के रूप में नहीं माना और ना ही प्रतिवादी संख्या 1 व 2 और प्रतिवादी संख्या 18 से 20 को इसके उत्तर में कोई अभिवचन करने का अवसर दिया। विचारण न्यायालय के पास इस आधार पर आगे कार्यवाही करने का कोई कारण नहीं था कि प्रतिवाद का कोई उत्तर नहीं दिया गया है और संहिता के आदेश VIII, नियम 6ई के संदर्भ में कोई डिक्री प्रदान की जा सकती है। विचारण न्यायालय ने यह स्पष्ट रूप से पाया कि प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से अपने आधिपत्य के दावे के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं है, लेकिन फिर भी प्रतिवादी संख्या 3 से 17 के पक्ष में, प्रतिवादी संख्या 1 व 2 और प्रतिवादी संख्या 18 से 20 के द्वारा, प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से किये गये प्रतिवाद का जवाब पेश करने में तथाकथित असफल रहने के आधार पर डिक्री जारी की गई। अजीब बात है कि न्यायालय यह ध्यान में रखने में असफल रही कि प्रतिवादी संख्या 18 से 20 कोई लिखित कथन पेश नहीं कर सकते थे और वे केवल कार्यवाही पर नजर रख सकते थे और विचारण में भाग ले सकते थे। पूरी प्रक्रिया जो अपनाई गई वह अवहनीय थी और डिक्री जो एक तरफ प्रतिवादी संख्या 1 व 2 के व दूसरी तरफ प्रतिवादी

संख्या 18 से 20 के प्रतिवाद का जवाब पेश करने में तथाकथित असफल रहने पर प्रदान की गई, स्पष्ट रूप से कानून में अवहनीय है।

18- सामान्यतः एक प्रतिवाद यद्यपि वह वाद में वादी द्वारा बताये गये वाद हेतुक से भिन्न वाद हेतु के आधार पर हो, पेश किया जा सकता है, लेकिन हमें यह प्रतीत होता है कि एक प्रतिवाद आवश्यक रूप से वाद में वादी के विरूद्ध निर्देशित होना चाहिए। यद्यपि प्रसंगव या उसके साथ उसमें वाद के सहप्रतिवादीगण के विरूद्ध भी अनुतोष का दावा किया जा सकता है। लेकिन एक प्रतिवाद जो केवल सहप्रतिवादीगण के विरूद्ध निर्देषित हो पोषणीय नहीं है। प्रतिवाद पेश किया जाकर एक मुकदमे को कुछ प्रकार के अन्तराभिवचनीय वाद में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। यहां प्रतिवादीगण संख्या 3 से 17 का वादी के विरूद्ध कोई दावा नहीं था, सिवाय इसके कि वे वादी द्वारा जताये जा रहे अधिकार और वादी जिन दस्तावेजों पर भरोसा कर रहा था, उनकी वैधता का खण्डन कर रहे थे और स्वयं में अधिकार निहित होना जता रहे थे। उनका यह कोई मुकदमा नहीं था कि वादी उनके द्वारा जताये जा रहे आधिपत्य में हस्तक्षेप करने की कोशिश कर रहा हो। उनका पूरा मुकदमा वाद के प्रतिवादी संख्या 1 व 2 के विरूद्ध निर्देशित था और वे राज्य के विरूद्ध अधिकार जताने का प्रयास कर रहे थे और राज्य के दावे कि अंतर्वलित भूमि राज्य के आधिपत्य में एक अधिसूचित वन है, को चुनौती दे रहे थे। इस प्रकार का प्रतिवाद हमारे

दृष्टिकोण में विचारण न्यायालय द्वारा विचारार्थ स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

19- रमेश चंद अर्दावतिया (ऊपर) में इस न्यायालय की टिप्पणियां, कि:

> "1976 के अधिनियम के 104 द्वारा संशोधित आदेश 8 की योजना को देखते हुए हमारी राय है कि दीवानी वाद में अभिवचन करने या प्रतिवाद करने के तीन तरीके हैं। सबसे पहले नियम 1 के तहत पेश किये गये लिखित कथन में अपने आपमें एक प्रतिवाद निहित हो सकता है, जो कि नियम 1 सपठित नियम 6ए के प्रकार में वादी के दावे के विरूद्ध एक प्रतिवाद होगा। जो नियम 6ए के द्वारा प्रदत्त कानूनी अधिकार के प्रयोग के तहत पेश किया हुआ माना जायेगा, न्यायालय की अनुमति के अधीन पूर्व से प्रस्तुत लिखित वाद में किये गये संशोधित के माध्यम से, प्रतिवाद किया जा सकता है। तृतीयतः एक प्रतिवाद नियम 9 के तहत पश्चावर्ती अभिवचनों के रूप में पेश किया जा सकता है।"

इस प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों में प्रतिवादी संख्या 3 से 17 को कोई मदद नहीं करती है। रिपोर्ट किए गए निर्णय में, रिपोर्ट किये गये

निर्णय में, इस न्यायालय को विचार करने की आवश्यकता नहीं थी कि क्या मुकदमा समाप्त होने के बाद प्रतिवाद दायर किया जा सकता है और क्या इसे केवल सह-प्रतिवादी के खिलाफ निर्देशित किया जा सकता है। न्यायालय उस मामले में एक अपूर्ण प्रतिवाद पर भी विचार नहीं कर रहा था।

20- हम यह भी पाते हैं कि प्रतिवाद के माध्यम से इस प्रकार की कोई प्रार्थना भी नहीं थी। केवल यह अभिवचन की चिरभोगजन्य स्वामित्व की घोषणा की जाये और घोषणात्मक अनुतोष के लिए न्याय शुल्क का भुगतान, पर्याप्त नहीं होगा। यह उपधारणा करते हुए भी कि इसे प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की स्वामित्व की घोषणा करने की प्रार्थना माना जा सकता है, प्रतिवादी संख्या 3 से 17 को आधिपत्य वापस प्राप्त करने की डिक्री प्रदान किये जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवाद के माध्यम से किया गया या स्थाई व्यादेस के लिए डिक्री जारी करने जैसे कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा जारी की गई, की कोई आवश्यकता नहीं थी। यहां तक कि आव';क न्याय शुल्क का भी भुगतान नहीं किय गया। चूंकि जो अनुतोष उन न्यायालयों द्वारा प्रदान किये गये, जिन अनुतोषों की प्रार्थना नहीं की गई थी, डिक्री का वह भाग किसी भी स्थिति में वहनीय नहीं है।

21- जहां तक वन अधिनियम की धारा 29 के तहत अधिसूचना के साबित नहीं होने का निष्कर्ष है, वह भी अवहनीय होना अभिनिर्धारित किया जाना होगा। गजट अधिसूचना जो दावा पेष करने के 32 वर्ष पूर्व जारी की गई और साक्ष्य में अंकित की गई और कोई परिस्थिति साबित नहीं की गई, जिससे यह निष्कर्ष को न्यायेचित ठहराया जा सकें कि कानूनन उक्त अधिसूचना प्रकाशित नहीं हुई होगी। अधिसूचना के विषय की नियमितता की उपधारणा की जानी चाहिए थी और प्रतिवादी संख्या 3 से 17 पर उक्त उपधारणा को खण्डन करने के लिए इसे प्रतिवादी संख्या 3 से 17 पर छोड़ दिया जाना चाहिए था। वर्तमान के लिए अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय द्वारा निकाले गये निष्कर्ष को निरस्त करने की ही आवश्यकता है।

22- इस प्रकार यह पाया गया है कि हस्तगत प्रकरण में प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से किये गये प्रतिवाद को प्रतिवाद के रूप में विचारार्थ स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय ने वाद को विचारण न्यायालय को नये सिरे से कार्यवाही करने के लिए प्रतिप्रेषित करने में गलती की है। वादी द्वारा दायर वाद विचारण न्यायालय द्वारा खारिज किया जा चुका है। वादी ने डिक्री के विरूद्ध कोई अपील नहीं की है। इस प्रकार वाद का खारिज होना अंतिम हो चुका है। चूंकि किया गया प्रतिवाद विचारार्थ स्वीकार करने योग्य नहीं पाया गया है, स्पष्ट रूप से प्रतिवाद को प्रतिवाद के रूप में विचारित किये जाने या इसे

नया वाद माना जाने का कोई प्रश्न नहीं है। इसलिए, यद्यपि प्रतिवादी संख्या 1 व 2 और प्रतिवादी संख्या 18 से 20 ने इस न्यायालय में, उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध कोई अपील पेश नहीं की है, यह आवश्यक है कि उच्च न्यायालय के प्रतिप्रेषित करने के आदेश को अपास्त करके उच्च न्यायालय के निर्णय को परिवर्तित किया जाये और इसे केवल एक ऐसे मामले के रूप में छोड़ा जाये जहां वाद खारिज रहेगा। जिसमें कोई प्रतिवाद पेष नहीं किया गया है।

23- इस दृष्टिकोण से, प्रतिवादी संख्या 3 से 17 की ओर से पेश की गई अपील को खारिज करते हुए भी और प्रतिवाद पर जारी डिक्री को निरस्त करने को पुष्ट करते हुए हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित प्रतिप्रेषित करने के आदेष को अपास्त करते हैं और वादी द्वारा प्रस्तुत वाद के खारिज होने को पुष्ट करते हुए डिक्री अपास्त करते हैं और यह अभिनिर्धारित करते हैं कि कोई वैध या मान्य प्रतिवाद नहीं था, जिसे इस वाद में विचारार्थ स्वीकार किया जा सकें। प्रतिवादी संख्या 1 व 2 प्रतिवादी संख्या 3 से 17 से अधीनस्थ न्यायालयों में खर्चा प्राप्त करने के अधिकारी होंगे और पक्षकारों को इस न्यायालय में अपने-अपने खर्चों को वहन करने के लिए छोड़ दिया जाता है।

बी.बी.बी. अपीलों का निपटारा किया गया।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी राकेश रामावत (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।